ISSN 2278-8808
SJIF 2015 = 5.403
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

डॉ० भीमराव अम्बेडकर की सामाजिक व्यवस्था संबंधी अवधारणा और दर्शन

शशि किरण, Ph. D.

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग किशोरी रमण महाविद्यालय, मथुरा

SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL'S IS LICENSED BASED ON A WORK AT WWW.SRJIS.COM

डॉ० भीमराव अम्बेडकर का नाम संविधान के निर्माता होने के कारण भारत के साथ–साथ विश्व में भी प्रसिद्ध है। वे एक महान व्यक्ति, दूरदर्शी, युगदृष्टा और बहुत बड़े समाज सुधारक है। उन्होंने एक ऐसी कुरीति का अंत किया जो हमारे भारतवर्ष में एक कलंक स्वरूप है। उन्होंने अपने ज्ञान, दर्शन और बौद्धिक क्षमता के द्वारा एक असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया। उन्होंने समाज के एक उपेक्षित पक्ष को वह स्थान दिलाया जो कि किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा करवाना दुष्कर कार्य था।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने समाज सुधार के अंतर्गत अपवित्रता, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, अपवित्रता आदि का अपने ही विचारों और अकाटय तर्को द्वारा सुधार करके शोषित व्यक्तियों को समाज में इज्जत से जीने योग्य बनाया।

मनुस्मृति के अनुसार समाज मे दो मोटे भाग थे। प्रथम आर्य लोग और दूसरे अनार्य लोग। आर्य नगरों और ग्रामों में निवास करते थे। पर अनार्य प्रायः बस्तियों से बाहर रहते थे। इनका जीवन भ्रमणशील और अस्थायी था। ये सुसंस्कृत नहीं होते थे। जो अनार्य गॉव या नगरों में रहते थे उन्हें मलेच्छु या दस्यु कहा जाता था। इसमें कुछ चाण्डाल और नीच कर्म करने वाले लोग भी थे। आर्यो के समाज का मूल आधार चर्तुवर्ण व्यवस्था थी। समाज में चार वर्ग थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। सभी स्मृतिग्रन्थों में इस चर्तुवर्ण व्यवस्था का विस्तृत रूप से विवेचन है। मनुस्मृति में उल्लेख है कि उच्च वर्ग के लोगों को म्लेच्छों से परस्पर वार्तालाप करने का निषेध था। रात्रि के समय ऐसे शूद्र व्यक्ति ग्रामों या नगरों में नहीं आते थे। वे कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं कर सकते थे उन्हें विद्याध्ययन और धन सम्पत्ति एकत्रित करने का अधिकार नहीं था यहाँ तक उन्हें अच्छा पहनने और अच्छा खाने का भी अधिकार नहीं था उन्हें जानवरों से भी बुरा जीवन व्यतीत करने पर विवश किया जाता था। उन्हें पूरी तरह अछूत और अपवित्र माना जाता था चाहे व्यक्ति कितना भी योग्य हो पर निम्न जाति पर पैदा होने

पर निम्न ही माना जाता था। सवर्ण लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे इसके विपरीत कोई व्यक्ति कितना भी अयोग्य और दुराचारी हो, उच्च वर्ग में जन्म लेने पर पूजनीय ही माना जाता था।

डॉ० अम्बेडकर ने इस वर्ण व्यवस्था का अपने वैज्ञानिक तर्कों के माध्यम से हल निकाला। उन्होंने वर्ण व्यवस्था के विरोध में निम्नांकित अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए– ''वर्ण व्यवस्था ईश्वरीय नहीं है। वर्णोत्पत्ति संबंधी ऋग्वेद सिद्धान्त असत्य एवं प्रक्षिप्त है। ''प्राचीन हिन्दू साहित्य में वर्गों की उत्पत्ति की समान अथवा संगतिपूर्ण व्याख्या नहीं मिलती। वर्गों की रचना किसके द्वारा हुयी, इस पर भी एकमतता नहीं है। ऋग्वेद में वर्णों की उत्पत्ति पुरूष से, शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति एवं ब्रह्मा, रामायण में कश्यप से और कहीं वर्णों की उत्पत्ति मनु से बतायी गई है। इसी प्रकार ऋग्वेद में चार वर्णों का उल्लेख है।''

चर्तुवर्ण व्यवस्था वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि गुणों के आधार पर भी समाज का वर्गीकरण नही किया जा सकता। वस्तु स्थिति यह है कि व्यक्ति की प्रकृति सदा बदलती रहती है इसलिए वर्णित गुणों की सापेक्षित स्थिति भी सदैव बदलती रहती है। इसके अलावा चर्तुवर्ण व्यवस्था व्यक्ति में परावलम्बन को बढ़ावा देती है। बाबा साहेब के अनुसार ''मनुष्य को अपनी आधारभूत आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। विद्या, बुद्धि एवं बल तथा श्रम की पृथक आवश्यकता पृथक व्यक्तियों को नहीं होती। व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों को अनदेखा कर उसे वर्णगत कार्यों में संबद्ध कर देना उसके व्यक्ति के स्वाभाविक एवं चतुर्मुखी विकास को कुण्ठित कर देना है। उदाहरण के लिए एक पराक्रमी एवं वीर ब्राह्मण को अध्ययन, अध्यापन का कार्य सौंपना, एक विद्वान को व्यापार में लगाना तथा व्यावसायिक बुद्धि में दक्ष एक शूद्र को श्रमिक का कार्य सौंपना उसकी अन्तर्निहित क्षमताओं को कुण्ठित करना है।

इसके इलावा वर्ण व्यवस्था से सामाजिक भेदभाव पनपता है और सामाजिक व्यवस्था में एक ही कार्य के लिए भिन्न–भिन्न वर्गों के व्यक्तियों के साथ भिन्न–भिन्न क्रिया–कलाप और नियम लागू करना मानवीयता के लिए एक कलंक स्वरूप है। ऐसी बुरी सामाजिक व्यवस्था भारतीय समाज के अतिरिक्त किसी अन्य समाज में कभी नहीं रही।

आश्रम व्यवस्था– चर्तुवर्ण से संबंधित आश्रम प्रणाली भी है। इन दोनों को वर्णाश्रम धर्म कहा जाता है। समाज का संगठन वर्णाश्रम के सिद्धान्तों पर किया गया था।

मनु ने उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रारम्भ बताया है, उपनयन संस्कार की आयु भी वर्णों के अनुसार अलग–अलग निर्धारित की गई थी। ब्राह्मणों की लिए आठ वर्ष, क्षत्रियों के लिए ग्यारह वर्ष और वैश्यों के लिए बारह वर्ष। ब्रह्मचर्य या विद्याध्यन का काल 18 वर्ष तक माना गया। ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थाश्रम था। इस काल में विवाह करके पारिवारिक जीवन व्यतीत किया जाता था। गृहस्थाश्रम को त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम और बाद में संन्यास आश्रम अपनाना पड़ता था। मनु ने शूद्रों के लिए संन्यास आश्रम का निषेध किया है अर्थात् शूद्रों को मोक्ष प्राप्त करने का कोई अधिकार

नहीं है। परंतु विष्णु स्मृति और कुछ अन्य ग्रन्थों में काल्पनिक और गूढ़ संन्यासियों का उल्लेख है। कई स्थलों पर शूद्रों व स्त्रियों को आश्रम व्यवस्था के अनुसरण का प्रावधान नहीं था।

अंबेडकर के अनुसार ''जीवन को चार समान स्तरों में विभक्त कर प्रत्येक स्तर से संबधित कर्तव्य व दायित्व को विहित करने की यह आश्रम व्यवस्था बाह्य दृष्टि से भले ही श्रेष्ठ व बहुत अच्छी लगती है किन्तु उसमें कई दोष हैं।''

क– अनिवार्य ब्रह्मचर्य बहुत आकर्षक लगता है पर समाज के 90 प्रतिशत भाग को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर देना बुद्धिमानी नहीं वरन् चालाकी है।

ख– विवाह को अनिवार्य बना देने के उपरान्त व्यक्ति के लिए इस बात का प्रावधान करना कि अंतिम क्षणों में वह पत्नी का परित्याग कर मुक्ति प्राप्त करे। यदि वह अपराध नहीं तो निर्दयता अवश्य है।

ग– वृद्ध व अशक्त व्यक्तियों की सेवा करने के स्थान पर आश्रम विधान के तहत उन्हें जंगल में बिना किसी देखभाल के मरने के लिए इस प्रकार छोड़ देना कि उस मृत्यु पर आंसू बहाने वाला भी न मिले, मूर्खता की हद है।

जातिप्रथा– जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज में असंगठन को जन्म दिया ''जाति प्रथा के कारण हिन्दुओं में असुरक्षा, भीरूता, कायरता, अलगाव व एकाकीपन का विकास हुआ यही वजह है कि जब अन्य धर्मावलम्बियों से हिन्दुओं का मुकाबला होता है तो वे भाग खड़े होते है और बहुधा छल कपट का सहारा लेते है। एक सिख अपने को सवा लाख के बराबर और एक मुसलमान अपने को हिन्दुओं की एक भीड़ के बराबर समझता है किंतु हिंदु अपने को अकेला पाता है। उसे यह विश्वास नहीं होता कि उसके सहधर्मी उसकी सहायता करेंगे। यह एकाकीपन का भाव ही हिन्दुओं की कायरता का कारण है।''

अस्पृश्यता– अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को अपवित्रता का मूल कारण माना है समाज में एक धारणा है कि अपवित्र वस्तु के संसर्ग में आने से जो पवित्र वस्तु अपवित्र हो जाती है उसे पुनः पवित्र किया जा सकता है। जैसे– शारीरिक, अपवित्रता नदी, तालाब या कुँआ के जल में स्नान करने, गंगाजल का शरीर पर छिड़काव करने, यज्ञ या हवन कुण्ड का पवित्र भस्म शरीर पर लगाने आदि विधियों के प्रयोग से दूर की जा सकती है। मानसिक अशुद्धता गंगाजल अथवा पंचामृत के पीने से दूर हो सकती है। नैतिक अपवित्रता धार्मिक प्रवचनों, वेद व अन्य पवित्र धर्म ग्रन्थों के पठन या श्रवण से अन्तरात्मा की शुद्धि द्वारा दूर की जा सकती है परन्तु जो अस्पृश्य के रूप में पैदा होते हैं वे जीवन पर्यन्त अस्पृश्य ही रहते हैं।

आरम्भ में वर्ण व्यवस्था बहुत लचीली थी। व्यवसाय अनिवार्य रूप से पैतृक नहीं था। दो वर्णों के बीच शादी–विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं थे परंतु धीरे–धीरे समयानुसार वर्ण व्यवस्था कठोर होती चली गई। ऋग्वेद में एक स्थल पर लिखा गया है– मैं किसान हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं और मेरी माता चक्की पीसने

का कार्य करती हैं। अतः स्पष्ट होता है कि जो वर्ण व्यवस्था अथवा जाति व्यवस्था का रूप बाद में देखने को मिला। ये समाज के कुछ उच्च वर्गों द्वारा अपने फायदे के लिए ही बनाया गया और जिस का स्वरूप समयानुसार बहुत ही दुःखदायी और मानवीय सभ्यता को ठेस पहुँचाने वाला हो गया।

डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा 26 जनवरी 1950 को राष्ट्रीय संविधान निर्मित होकर लागू किया गया। जिसमें अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया। अस्पृश्यता के प्रचलन को रोकने के लिए सन् 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम पारित हुआ। इस कानून के द्वारा अस्पृश्यता को अपराध घोषित किया गया और इसके लिए दण्ड का प्रावधान किया गया।

डॉ० अम्बेडकर के विचारानुसार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की गुंजाइश तब तक नहीं है जब तक लोगों को चिन्तन की स्वतन्त्रता न हो। इसके लिए लोगों की विचारधारा का प्रगतिशील होना आवश्यक है। जब हमारे देश के सर्वाधिक प्रिय और श्रेष्ठ कवि तुलसीदास भी यह कहने में संकोच नहीं करते–''ढोल गंवार शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'' तो सामान्य व्यक्ति के बारे में क्या कहा जा सकता है? अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्यों की आन्तरिक सोच में जागृति हो तभी सामाजिक असमानता दूर हो सकती है। व्यक्ति को गुणों और योग्यता से पहचाना जाए न कि उसे किसी धर्म या जाति के नाम पर जाना जाये।

डॉ० अम्बेडकर चाहते थे कि ''हिंदु धर्म का केवल एक मात्र प्रचारक ग्रन्थ हो जो सभी हिन्दुओं को स्वीकार्य हो और जो सभी के द्वारा मान्य हो'' ऐसा ग्रन्थ ही राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समानता और न्याय की परिकल्पना कर सकता है। डॉ० अम्बेडकर अछूतों के मसीहा एक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाने वाले युग पुरूष थे। उनका मानना था कि राजनीति में सक्रिय भाग लिए बिना सामाजिक समानता को लाना असंभव है जब हमारा समाज मजबूत होगा, उन्नति करेगा तभी राष्ट्र की उन्नति संभव है। वे उन राजनीतिज्ञों में थें जिन्होनें राष्ट्र की दिशा और दशा दोनों में आश्चर्यजनक परिवर्तन किया वे न केवल एक व्यक्ति थे वे एक संस्था थे, एक समाज थे क्योंकि जब व्यक्ति में समाज की सुगन्ध आने लगती है तब वह सम्पूर्ण हो जाता है। हर व्यक्ति समाज नहीं हो सकता वे समाज के ऐसे चिंतक एवं मसीहा थे। जिस समाज में लोगों की स्थिति पशुओं से भी बदतर थी उन्होनें अपनी सामाजिक व्यवस्था संबंधी अवधारणा एवं दर्शन द्वारा सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अन्त में कहा जा सकता है डॉ० अम्बेडकर वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे उनके विचारानुसार प्रत्येक धर्म एवं जाति का व्यक्ति पूर्णरूपेण हर उचित कार्य करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। तभी देश का विकास संभव है ये सब बातें उन्होनें संविधान में विस्तार से लिखी है। इस प्रकार सामाजिक भेदभाव एवं असमानता को मिटाकर डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने एक अद्वितीय कार्य कर दिखलाया है।

संदर्भ सूची

डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार– डा० रामगोपाल सिंह– पृष्ठ सं 32
डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार– डा० रामगोपाल सिंह– पृष्ठ सं 44
डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार– डा० रामगोपाल सिंह– पृष्ठ सं 48
डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार– डा० रामगोपाल सिंह– पृष्ठ सं 68

सहायक ग्रन्थ

ऋग्वेद
भारतीय संविधान– डॉ० भीमराव अम्बेडकर
डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार–डॉ० रामगोपाल सिंह